Introduction.

## आ मु ख

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल शुद्ध तथा विशिष्ट कला कौशलपूर्ण काव्य के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मुक्तक काव्य-रचना की दृष्टि से तथा काव्यशास्त्र-निर्माण की दृष्टि से भी रीतिकाल समग्र हिन्दी साहित्य में यदि अनुपमेय कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। यह साहित्य का वह विशिष्ट युग है जब शास्त्र और काव्य दोनों की रचना युगवृत् हो रही थी। संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ-राशि के उत्तमांश को तत्कालीन काव्य भाषा 'ब्रज' में प्रस्तुत कर हिंदी के इस युग के कवियों ने लोकरंजन और लोकशिक्षण का महान कार्य किया। संस्कृत भाषा में निगूढ़ काव्यशास्त्र को लोकमानस तक पहुँचा कर इन कवियों ने बहुत बड़ा उपकार किया था। कुछ आलोचक भले ही इस युग के इन कवियों की दरबारी प्रवृत्ति तथा एक सीमित परिधि में आबद्ध होने के कारण कितनी ही आलोचना करें, किन्तु उपर्युक्त तथ्यों की ओर से वह भी अपना मुख नहीं मोड़ सकते।

कच्छ भुज के महाराव लखपति सिंह के आश्रित जैन मुनि भट्टारक कुँवरकुशल भी ऐसे ही एक कृती कवि थे जिन्होंने हिन्दी प्रदेश से सुदूर पश्चिम में बैठकर रीतियुग की शास्त्र काव्यधारा में अपनी अमरकृति 'लखपति जससिन्धु' की रचना द्वारा योगदान दिया था। 'लखपति जससिन्धु' कुँवरकुशल की रचनाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विशाल आकार की रचना है। कुँवरकुशल और उनके इस काव्य-ग्रंथ के सम्बंध में एकाध ग्रन्थों तथा छुटपुट लेखों में प्राप्य उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। गुजरात के हिन्दी कवियों पर शोध करने वाले विद्वानों ने भी इस महान रचना का मात्र उल्लेख करके संतोष कर लिया। इस दिशा में सर्वप्रथम श्री अगरचन्द नाहटा ने कार्य किया था। उन्होंने राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज रिपोर्ट में 'लखपति जससिन्धु' का उल्लेख किया।

तत्पश्चात् अपने 'कनककुशल तथा कुँवरकुशल' लेख में अधिक विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। इसके उपरान्त डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी ने 'मुंज कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला' शीर्षक विस्तृत शोध निबंध में कुँवरकुशल और उनके 'लखपतिजससिन्धु' ग्रन्थ का विस्तार से वर्णन किया। कालान्तर की जो सूचनायें मिलती है वह इन्हीं दो विद्वानों के विवरणों पर आधारित है। कुँवरकुशल कृत 'लखपति जससिन्धु' ग्रन्थ पृथक् विवेचन की अपेक्षा रखता था। इस ग्रन्थ की चर्चा मात्र चार छह पृष्ठों में कर देने से न तो इसका समग्र परिचय ही प्राप्त हो सकता था और छह न ही ग्रन्थ में प्रस्तुत काव्यांग विवेचन की रूपरेखा ही स्पष्ट हो पाती थी। इस तरह यह रीतिबद्ध रचना अविवेचित ही रह गई थी। अतः इसी दृष्टि से प्रस्तुत शोध-प्रबंध में इस ग्रन्थ को आधार बनाया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में रचनाकार की अपेक्षा रचना को विशेष महत्व दिया गया है। रचना द्वारा प्रकट व्यक्ति और रचनाकार की कीर्ति अमर होती है। 'लखपति जससिन्धु' में उसके कर्ता कुँवरकुशल तथा कुँवरकुशल के आश्रयदाता दोनों को अमर बनाने का उपक्रम है। भारतीय मनीषियों की कुछ ऐसी चित्त वृत्ति रही है कि वह अपनी रचनाओं में अपने सम्बंध में बिल्कुल मौन रहते हैं। अतः यदि किसी कवि, लेखक के सम्बन्ध में बहिर्साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो सके हैं तो अन्तः साक्ष्य तो बिल्कुल शून्य ही रहता है और ऐसी स्थिति में केवल वह रचनाशलाका ही इतिहास के गहन अन्धकार में कवि -कीर्ति को प्रकाशित करती रहती है और रचना-रचनाकार का स्थान ले लेती है। आचार्य कुँवरकुशल एक जैन मुनि थे और उन्होंने भी अपनी किसी भी रचना में अपने सम्बंध में कोई संकेत नहीं किया है। 'लखपतिजससिन्धु' के 'कवि-वंश-वर्णन' प्रसंग में केवल जैन मुनि परम्परा का ही उल्लेख किया है। इस दृष्टि को भी 'लखपतिजससिन्धु' को ही अनुसन्धायिका ने अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की प्रेरणा अनुसन्धायिका को अपने गुरू डॉ0 व्याशंकर शुक्ल से मिली । उन्होंने अनुसन्धायिका से कहा -'यदि निष्ठा, संकल्प और परिश्रम से कार्य कर सको तो मैं तुम्हें एक मैन्युस्क्रीप्ट जो ब्रजभाषा में है और काव्यशास्त्र सम्बन्धी है दूँ।' अनुसन्धायिका ने गुरुवर शुक्ल जी के संकेत को समझा और उक्त विषय पर विनम्रतापूर्वक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। अनेक शोध-संस्थानों की यात्रायें करने का भी आदेश गुरुवर शुक्ल जी ने प्रारम्भ में ही दे दिया था। अत: विषय के पंजीकृत हो जाने के उपरान्त भी अनुसन्धायिका ने अपने पूज्य पिता जी एवं पूज्य अग्रज के साथ अहमदाबाद, पुना, पाटण, जोधपुर आदि स्थानों के शोध-संस्थानों की यात्रा की । कहं-कहं दिन रहकर वहाँ के ग्रन्थागारों को देखा, किन्तु 'लखपतिजससिन्धु' का 13वीं तरंग तक का पूर्वार्द्ध कहीं भी नहीं उपलब्ध हो सका। इस सम्बन्ध में अगरचन्द नाहटा से पत्र-व्यवहार किया और प्रत्यक्ष भी मिली । किन्तु वहाँ भी कुछ हाथ न लगा। केवल डॉ0 शुक्ल जी के पास जो प्रति थी उसी को आधार बनाया। 'लखपतिजससिन्धु' का उत्तरार्द्ध अर्थात् पिंगल भाग जिसे कुछ विद्वानों ने 'लखपति पिंगल' नाम से अलग ग्रन्थ मानने का आग्रह किया। किन्तु प्रस्तुत लेखिका का अपना स्पष्ट मत है कि यह 'जससिन्धु' का ही उत्तरार्द्ध है। इस पिंगल भाग की प्रति यद्यपि डॉ0 शुक्ल जी के पास भी है तथापि हमें जोधपुर में भी इसी की प्रति मिल गई और इस प्रकार से अनुसन्धायिका ने इस अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थ की सांगोपांग विवेचना सर्वप्रथम बार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

'लखपति जससिन्धु' की किन्हीं-किन्हीं तरंगों की पुष्पिका में 'कवि-रहस्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। अत: कुछ लोग 'कवि-रहस्य' के रूप में पृथक् ग्रन्थ की कल्पना भी करते रहे। इस प्रकार एक ही ग्रन्थ के दो और विकल्प प्रस्तुत किए गए, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि यह 'लखपति जससिन्धु' नाम का एक ही ग्रन्थ है जिसमें महाराव लखपतिसिंह का यशसागर तरंगित होता हुआ दृष्टिगत होता है।

कुँवरकुशल ने विस्तृत रूप में काव्यांग-विवेचन की उस लीक से हट कर कार्य किया था जहाँ छन्द को अन्य काव्यांगों के साथ प्रस्तुत नहीं किया जन-स जाता था वरन् पृथक् ग्रन्थ के रूप में उसका विवेचन होता था। कुँवरकुशल ने प्रथम बार छन्द को पूरी महत्ता देते हुए उसे समग्रता और विस्तार से प्रस्तुत किया। वह भी सभी काव्यांगों के विवेचन के साथ एक ही ग्रन्थ की अंतिम तरंगों में। यद्यपि इनके पूर्व कविवर केस और समकालीन सोमनाथ आदि ने छन्द को अपने ग्रन्थों में लिया है किन्तु अत्यन्त संक्षिप्त रूप में। सम्भवत: इसी लिए भी कालान्तर में प्रतिलिपि-कर्ताओं ने 'लखपति जस सिन्धु' के उत्तरार्द्ध अर्थात् पिंगल भाग को अलग प्रतिलिपित किया और आगे के खोजकों ने भी 'लखपति पिंगल' नाम से इसे कुँवरकुशल की पृथक् रचना माना।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो खण्डों में विभाजित है। इसमें कुल सात अध्याय हैं। इस प्रबन्ध का पहला ४ अध्याय रचना तथा रचनाकार से सम्बंधित है। इसमें ग्रन्थ की महत्ता, ग्रन्थ का सामान्य परिचय, ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा, ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य, ग्रन्थ का आधार आदि मुद्दों पर विचार किया गया है। साथ ही रीतिकालीन परम्परा के सन्दर्भ में ग्रन्थ-विवेचन की पद्धति का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त कुँवरकुशल के रचना-काल्य का निर्धारण करते हुए उनकी अन्य रचनाओं का भी परिचय दे दिया गया है। इस समग्र विवेचन में अनुसन्धायिका का निजी प्रयास रहा है।

दूसरे अध्याय में रीतियुगीन परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। इस अध्याय के ४ को भी दो भागों में विभाजित किया है - पहले में उत्तर भारत की परिस्थितियों का वर्णन है और दूसरे में कवि के निवास स्थान भुज कच्छ की। क्योंकि रचनाकार पर जहाँ एक ओर देश की बहुस्वीकृत प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ता है वहीं दूसरी ओर जिस वातावरण में रहकर, साँस लेते हुए अपनी रचना का

निर्माण करता है, उससे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इसलिए ही हिन्दी प्रदेश और कच्छ प्रदेश दोनों की परिस्थितियाँ वर्णित की गई हैं। इस विवेचन में अनेक ग्रन्थों का सहारा लिया गया है किन्तु निष्कर्ष अनुसन्धायिका के अपने हैं।

दूसरे खण्ड का प्रारम्भ तीसरे अध्याय से हुआ है। यहाँ से कुँवरकुशल का आचार्यत्व के रूप में अनुशीलन किया गया है। इस अध्याय में अलंकारों का विवेचन है। अलंकार का महत्व एवं अलंकार का अर्थ बताते हुए कुँवरकुशल द्वारा प्रस्तुत लगभग एक सौ अलंकारों में से कुछ प्रमुख अलंकारों को लेते हुए विवेचन किया गया है। इसमें शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही हैं।

चौथे अध्याय का विषय ध्वनि-निरूपण है। ध्वनि का अर्थ बताकर ध्वनि के विभिन्न भेदों व उपभेदों को लेकर विवेचित किया है। यहीं पर रस की भी चर्चा हुई है क्योंकि कुँवरकुशल रस को स्वतंत्र अस्तित्व नहीं देते वरन् ध्वनि के एक भेद रस-ध्वनि के रूप में स्वीकार करते हैं।

पाँचवें अध्याय में शब्द-शक्ति विषय का विवेचन किया गया है। शब्द-शक्ति के तीनों भेदों अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना के समस्त उपभेदों को लेते हुए विस्तृत उल्लेख किया है।

छठें अध्याय में गुण-दोष, छन्द, काव्य-हेतु तथा प्रयोजनों आदि विषय लिए हैं। 'लखपति जससिन्धु' में इनका विवेचन किस प्रकार से हुआ है इसका विश्लेषण किया गया है। यह समग्र विवेचन अनुसन्धायिका की निजी उपज है।

सातवें अध्याय में 'लखपतिजससिन्धु' का अनुशीलन, काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी किया गया है। इसमें भाषा और बिम्ब, की जहाँ चर्चा हुई है वहीं

छन्द-लय की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का आकलन किया गया है, साथ ही प्रकृति-चित्रण श्रृंगार-रस तथा श्रृंगारेतर भावों की किस रूप में विवृति हुई है, इस दृष्टि से भी अनुसन्धायिका ने प्रस्तुत ग्रन्थ को देखने का प्रयास किया है और इस प्रयास में अनुसन्धायिका की अपनी दृष्टि ही रही है। सिद्धान्त पक्षों को छोड़कर शेष सभी कुछ स्वप्रयास ही है।

अन्ततोगत्वा उपसंहार में कुँवरकुशल के आचार्यत्व और कवित्व का सम्यक्तया मूल्यांकन प्रस्तुत किया है और रीति-परम्परा के सन्दर्भ में इस ग्रन्थ की उपलब्धि भी बताई गई है। प्रत्येक रचना अपने पूर्ववर्ती रचनाकार से प्रभाव ग्रहण करती है, इस तथ्य का भी उल्लेख किया है। कुँवरकुशल के ग्रन्थ पर अपने से पूर्व किनका प्रभाव पड़ा है, इसका वर्णन किया है। अन्ततः सम्भावनाओं के साथ-साथ रीति ग्रन्थों में 'लखपतिजससिन्धु' का स्थान भी निर्धारित किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध लिखते समय गुरुवर डॉ० व्याशंकर शुक्ल से जो प्रेरणा मिलती रही है उसके लिए धन्यवाद देकर कृतघ्नता की पात्र नहीं बनना चाहती। जब-जब भी अनुसन्धायिका निराशा का अनुभव करती थी तब-तब अनेक प्रकार से प्रोत्साहन देकर उस निराशा के गहन अन्धकार से उसे उबारा है। इन्हीं के कुशल निर्देशन में यह शोध-कार्य सम्भव हो सका है। 'लखपतिजससिन्धु' की प्रति देकर अनुसन्धायिका को जिन परेशानियों और कठिनाइयों से बचाया है, उसके लिए वह हृदय से कृतज्ञ रहेगी। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध लिखते समय उपयोग की जानेवाली अनेक पुस्तकें देकर भी जो अपूर्व सहायता की है उसके लिए अनुसन्धायिका सदैव अनुगृहीत रहेगी। मैं यहाँ अपने पूज्य पिता तथा पूज्य अग्रज की भी अत्यन्त ऋणी हूँ जिन्होंने मेरे शोधकार्य में रुचि ही नहीं ली वरन् पग-पग पर मुझे सहारा दिया, साथ चले और प्रेरित करते रहे। बिना इनके आशीर्वाद के यह

कार्य अनुसन्धायिका किसी प्रकार भी नहीं कर पाती । अनुसन्धायिका अपने अन्त:करण से इनके समक्ष कृतज्ञ भाव से नतशिर है । इसके अतिरिक्त समय-समय पर जिन महानुभावों एवं संस्थानों की ओर से जो सहयोग मिला है उन सबके प्रति आभार प्रकट करती है । महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० मदनगोपाल जी गुप्त के प्रति भी अनुसन्धायिका हार्दिक आभार व्यक्त करती है जिन्होंने इस विषय पर शोध करने की स्वीकृति ही नहीं दी वरन् समय-समय पर अपने अमूल्य सुझावों द्वारा इसके मार्ग को प्रशस्त किया ।

अन्तत: अनुसन्धायिका का विनम्र निवेदन है कि विद्वज्जन इस शोध-प्रबन्ध की त्रुटियों को न देखते हुए 'संत हंस गुन गहहि पय परिहरि वारि विकार' के रूप में ग्रहण करने की कृपा करें ।

सुशीला आहूजा

सुशीला आहूजा